रोशनी की तलाश

श्रीहर्ष

सामयिक प्रकाशन कलकत्ता

मुख्य वितरक—धरती प्रकाशन गंगाशहर
बीकानेर

प्रकाशक :
सामयिक प्रकाशन
क्यू-१०, ४०/१ टेंगरा रोड
कलकत्ता-७०००१५

प्रथम संस्करण : १९८४

आवरण : अजीत विक्रम (दत्तो बाबू)

मूल्य : पन्द्रह रुपये मात्र

मुद्रक : एसकेज
८, शोभाराम बैशाख स्ट्रीट
कलकत्ता-७०००७०

ROSHNE-KE-TALASH (Poems)
SHREE HARSH

अंधेरे के खिलाफ
निरन्तर गतिशील
लहू लुहान विश्वासी पांवों को
जो रोशनी की तलाश में
चलते जा रहे हैं……

अपनी बात

- आज के जटिल यथार्थ को विवेक के साथ कविता में व्यक्त करना एक कर्त्तव्यनिष्ठ महत्वपूर्ण कार्य है। हमारे दैनिक जीवन को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवधारणायें जिस रूप में प्रभावित करती हैं, उन्हें कलात्मकता के साथ कविता में प्रस्तुत करना कवि कर्म का मुख्य अंग है। सामाजिक जीवन जिन सामंती अंधविश्वासों में जकड़ा हुआ है और औद्योगिक विकास का सतही आधुनिकीकरण उसे सहलाकर मोटा बनाता है व परिवर्तनगामी शक्तियों को कमजोर बनाता है। इसका कारण बिना किसी सार्थक सामाजिक परिवर्तन की कल्पना। आज विवेकशील व्यक्ति को विचित्र तरह के विरोधाभास की स्थिति से गुजरना पड़ रहा है। राजनैतिक, आर्थिक संकट जिस तीव्रता के साथ गहराता जा रहा है एवं सजग व्यक्ति के समक्ष सामाजिक एवं सांस्कृतिक संकट जिस रूप में उपस्थित हो रहा है—यह एक विचारणीय प्रश्न है। ऐसे संकट के समय जनवादी कविता का यह कर्त्तव्य है—इसके खिलाफ कला के हथियारों को धारदार बनाकर, मानवीय मूल्यों पर होने वाले प्रतिघातों को रोकने की चेष्टा कर

- सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए जीवंत दर्शन दृष्टि का होना जरूरी है। जीवंत दर्शन दृष्टि के अभाव में यथास्थिति का पोषण ही अधिक होता है। जीवंत दर्शन हमें सामाजिक यथार्थ की जटिलताओं को समझने के लिए एक वैज्ञानिक जीवन दृष्टि देता है। हमारी स्वतंत्र चेतना का विकास कर हमें नागरिक अधिकारों की रक्षा करना सिखाता है। कविता के परिप्रेक्ष्य को व्यापकता प्रदान करता है।

- जनवादी कविता जनसंघर्षों से उपलब्ध जनवादी मूल्यों के माध्यम से नये सौंदर्य के प्रतिमानों की स्थापना के दौर से गुजर रही है। काव्यगत सभी मूल्यों की रक्षा करते हुए जन-जीवन में आज के जटिल सामाजिक यथार्थ को सम्प्रेषित करना व उनकी कलात्मक रुचियों का परिष्कार करना, दूसरी तरफ जनसंघर्षों में फैलायी जाने वाली हताशा, निराशा, यथास्थितिवाद, संकीर्णता, साम्प्रदायिकता आदि को जड़ से काटना—यह कार्य बोधगम्य सहज भाषा के द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

- व्यापक दृष्टिकोण के साथ विषय वस्तु का चुनाव जनवादी कविता के लिए जरूरी है। शक्तिशाली कथ्य के साथ-साथ सधे हुए शिल्प का होना भी जरूरी है। जनजीवन में व्याप्त अंधविश्वासों का वैज्ञानिक दृष्टि से पुनः मूल्यांकन कर उसकी सार्थकता व निरर्थकता को सिद्ध करना आज की जनवादी कविता का दायित्व है।

- समय की धड़कन पहचानते हुए अपने युग के एक-एक तेवर को सूक्ष्मता व गहराई के साथ परख कर अपने अनुभवों को समृद्ध करना जरूरी है। जीवन के गतिशील मुख्य प्रवाह से जुड़कर ही जीवंत कविता की रचना सम्भव है।

- पूरी सावधानी के बावजूद सामान्य मुद्रण अशुद्धियों के लिए क्षमा याचना।

- 'रोशनी की तलाश' मेरा तीसरा काव्य संग्रह है। मुझे विश्वास है, समझदार पाठक, विवेकशील आलोचक अपने स्वस्थ सुझावों से मेरी अगली काव्य यात्रा को सफल बनाने में सहयोग करेंगे।

क्रम

कीमत

इस उलझी हुई गुत्थी को
ऐसे ही चलने दो
नहीं तो
बहुत से चमकदार चेहरों का
पानी उतर जायेगा
ताम-झाम के शोर शराबे में
बजते बाजों के
होश उड़ जायेंगे
और किसी नये जादू की छड़ी से
हम पत्थर-युग की मूर्तियों में
बदल जायेंगे।
सच ! कितना महंगा है
आज एक आदमी को
बचाना।

७-३-८१

अपने ही आकाश में

इस रेशमी जाल में
उन तोतों की तरह फंसते जा रहे हैं
हम—
जो जाप करते थे
"शिकारी आयेगा,
जाल बिछायेगा,
दाना डालेगा-फंसना मत"
और फंस गये।
पता नहीं किस बिल में छिपा है
हमारा दोस्त चूहा
जो इस जाल की गांठों को
काटकर
फिर एक बार हमें
आजादी के साथ घूमने दे
अपने ही आकाश में।

७-३-८१

मेरे शब्द

शब्दों पर चढ़ा मुलम्मा उतार कर
अपनी बात कहना चाहता हूँ
चुप्पी तोड़कर
सच बोलने का समय
आज नहीं तो कल जरूर आयेगा !

उलझन के ऊटपटांग समुद्र में
मेरे शब्द गोताखोरों की तरह
जाते हैं तह तक
और घड़ियालों के जबड़ों से
सच को निकाल कर लाते हैं बाहर
पूरा माहौल बेचैनी की कसमसाहट से
छटपटाने लगता है ।

खौफनाक चाकू सी चमकती आँखें
अपने कपाटों में कैद करने को
उछलती है
मैं नमकीन पानी की धारा बनकर
बहने लगता हूँ
मेरे शब्द नहा-धोकर
समय के सही अर्थ खोलने
हो जाते हैं खड़े ।

अर्थों के नये आकाश में उड़ते
नये सपनों को

रौंदने-अश्वमेधी सफेद घोड़े
भागते हैं चारों तरफ
मेरे शब्द लव-कुश की तरह अड़कर
उन्हें बना लेते हैं बंदी
और हवा के कान में
भड़ा फोड़कर
युद्ध की करते हैं घोषणा—
इसी युद्ध में
नये जीवन के सच का
पहला पाठ पढ़ती है रचना।

८-३-८१

विद्रोही कवि नजरूल इस्लाम की स्मृति मे

एक ही गीत

तुम्हारे शब्दों की शक्ति से
डरते थे सत्ता के नगाड़े
तुम्हारी विद्रोही चेतना से
उखड़ गये थे सेठों के अखाड़े
आज फिर हताशा के घटाटोप में
पीला हो रहा सूरज
ऐसे में विद्रोही कवि
तुम्हारा होना जरूरी लगता है।

कुर्सियों के हाथ पांव
अपने लोहे के गज से
नाप नहीं पाये तुम्हारी ऊँचाई को
और जहर डूबी कैंची से
काट नहीं पाये तुम्हारी लम्बाई को
सरकारी ठंडे तहखाने में कैद नहीं हो तुम
अकेले चलने का कोई अर्थ नहीं है आज।
धरती से उगते नये अंकुर के होठों पर
एक ही गीत रह रह कर गूंजता है
आमि विप्लव-आमि विप्लव
ऐसे में तुम्हारा होना और भी जरूरी लगता है
२४-५-८१

भीतर की आंच

भूखके बुखार से जलते
शरीर पर
जब भी थर्मामीटर लगाता हूँ
पारा लुढ़क कर किनारे की नोक पर
आ जाता है नीचे
ठंडे होने की घबराहट
फिर तलाश करती है नई गर्मी।

पंखे की तरह फुलस्पीड पर दौड़ती
चीजों की गर्मी के ताप से
पारा अपने आप सरक कर
चढ़ जाता है ऊपर
और ऊपर और और ऊपर…

सच! चीजों की तुलना में
आज आदमी इतना ठंडा
और सस्ता हो गया है
कि थर्मामीटर भी देखकर
लगा जाता है चुप!
क्या फिर भीतर की आँच से
आदमी गर्म नहीं हो सकता?

३-७-८१

चेहरा

अचानक टाट पट्टी पर बैठे
लोगों को खबर लगी
कि 'वह' बहुरूपिया है,
और आटे में नमक की तरह
मिल गया है, सबके साथ।
घबराहट से पांवों के नीचे की
जमीन सरक गई
और हाथों के तोते उड़ गये।
भीतर घुसकर 'वह' भड़का रहा था आग
और चालाक बनिये की तरह
उजाड़ना चाहता था हँसता बाग।

आये दिन लोमड़ी की तरह
परोसता था धूर्तता
और खुद को जाल में फंसा देख
खुंखार बबर शेर की तरह
कान कर लेता था लाल।
'वह' जनेऊ उठाकर
राम की कसम खाता है
और लोगों के सच की सीता चुराने
रावण की भूमिका निभाता है।
उसके चेहरे का हर बदलाव
भूसे की तरह सुलगता था दिन-रात।
लड़ाई की लम्बी यात्रा में

खरगोश की तरह हंसता रहा
और मौका पाते ही
सांप बन डसता रहा।

८-३-८१

जांच बाबू

फव्वारे की तरह रोशनी फेंकती टार्च से
कैसे जांच लेते हैं छोटी सी आंख से
मीटर में ठहर ठहर कर रेंगती सूई को
और हमेशा-बड़े बोझ का बिल
भेज देते हैं घर पर ।
मैंने देखा है
जब मीटर सन्नाटे की बेहोशी में ऊंघते हैं
घर रोशनी में नहाकर हवा के तौलिये से
पोंछते हैं अंधेरा
और दो कदम चलकर आ जाते आगे ।
जब घरों में अंधेरे का हड़कम्प मचता है
तब मीटर तेजगति से भागते हैं बेतहाशा
जांच बाबू
कुछ भी न देखकर सब कुछ
कैसे देख लेते हैं आप
और बड़े बोझ का बिल
भेज देते हैं घर पर

कल राखाल मिस्त्री
अपने स्क्रू ड्राइवर से जंग लगे पेंच
खोलते खोलते कह रहा था
मैं जानता हूँ इस गड़बड़ी की मूल जड़
और कर सकता हूँ सब कुछ ठीक ।
लेकिन जब से ठीक करने के बारे में
सोचा है मैंने

मीटर मालिक के बूटों की चरमराहट
गुप्तचरी आंखों से
खोज रही है मुझको घर घर
अब जैसा चलता है बिटिया वैसा ही चलने दो
कुछ दिन इस भूसे को और सुलगने दो
मैं फिर से धरती के रेशे रेशे में
विद्युत बन फैल रहा हूं
जांच बाबू क्या आप भी ऐसे ही फैलेंगे ?

३-७-८१

भविष्य की आशा

अपनी छड़ी को हवा में नचाते हुए
एडवर्ड राम छबीला राय
कक्षा में घुसते ही
गुर्रा कर बोले
जो भी हिन्दी में बोलेगा
उसे बेंच पर खड़ा करके
मुर्गा बना दूंगा
कान खोल नहीं सुनेगा
उसे मजा चखा दूंगा
जानते हो हिन्दी
गुलामी के खिलाफ लड़ने वाले
गुलामों की भाषा है
शब्द शब्द मिट्टी के रस में पगा है
मेहनती जीवन के भविष्य की आशा है
धत्! धत्! ऐसी भाषा बोलने का
साहस तुम करते हो
असभ्य होकर टाई-सभ्यता से नहीं
डरते हो।
एक साथ चिल्लाये सब लड़के जोर से
सर जी—मुर्गा ही बना दीजिये
सूरज के साथ साथ
सोये हुए लोगों को जगायेंगे
पलथी मार जहाँ भी बैठा है अंधेरा
उसे मारकर भगायेंगे···सरजी
मुर्गा ही बना दीजिये।
२५-९८१

संभव नहीं बिना तोड़े

अपने चश्मे पर चढ़ी
भ्रम की धुन्ध को पोंछकर
सच को सच की तरह
कहने की चेष्टा करता हूँ
मेरी व्यक्तिगत फाइल में
काली सियाही का बड़ा निशान लगा कर
मोटे पेपर वेट के नीचे
दबा देता है काला वजीर
अब फाइल बड़े लाला के पेट से भी
मोटी हो गई है
भय के पसीने से भीगोने
डराता है स्याह वजीरी आँखों से।
"नोनसेंस
ऊबड़खाबड़ खुरदरी भाषा बोलते हो
मक्खन की तरह मुलायम लोगों के सामने
कठपुतली बन नाचना सीखा नहीं अबतक"
गेट आउट
बन्द गेट से आउट होना
सभव नहीं बिना तोड़े
हंसकर उड़ाने का समय नहीं है अब।

२७-९-८१

सब के लिये…

अपने लिये
खूबसूरत सपने बुनते बुनते
उँगलियां दर्द से थक गई हों
तो आओ
सबके लिये बुनें।
सिकुड़ कर हँसते हँसते
पूँछ हिलाने पर
मालिक ऊपर ऊपर खुश होकर
आदमी का कच्चा मांस खिलायेगा
गले में चमकीला चमड़े का पट्टा बाँध
आदमी को कटवायेगा
क्या अभी भी भौंकते हुए भाग कर
आदमी को पीछे से काटोगे ?

२७-९-८१

हँसता चाँद

शायद पहली बार
इस तरह चांद को हंसते हुए
देखा था मैंने
सारे मकान अपने शरीर पर जमी
अन्धेरे की परत दर परत को
मल मल कर धो रहे थे
भीतर की घुटन से छटपटाती खिड़किया खोल
बाहर के साथ एकाकार हो रहे थे।

तालाब के किनारे बैठी रोशनी
नुकीले पत्थर फेंक काई के मुटापे को
काट रही थी
ठहरी हुई हवा की तरह गुमसुम होकर
पूछने लगी
पाड़े के गुण्डों की तरह घूमते ये शराबी बादल
गरज गरज कर गाली गलौज कर रहे थे
धमाकों के धुंए से परेशान था आसपास
हवा सीटी बजाकर खदेड़ रही थी सबको
और देखते ही देखते
फिर आकाश में हंसने लगा है चांद
ऐसी अनिश्चितता में निडर होकर
कैसे हंस लेता है चांद
शायद हँसने के नतीजों को
जानता नहीं है ठीक से !
२९-९-८१

खलील भाई

खलील भाई
ठीक से धुनना इस बार
बड़े मकान की रूई को
इसके रेशे रेशे की ऐंठन को
धुनकर बना दो मुलायम।

अब तक धुनते थे
अभावों की पुरानी काली रूई को
और खुद को भी धुन डालते थे
इस बार रेशे रेशे की ऐंठन को
धुनकर बना दो मुलायम।

यह रूई गद्दे-मसनदों की तरह
हमारे सपने बिछाकर
टांगे लम्बी कर लेटती है
और नशे के रुआब में बड़बड़ाकर
कपड़े उतार-खदेड़ देती है
हवा में जहर घोलकर
पिलाती है प्यासे होठों को
यह रूई भूख कर्ज की माँ-महारानी है

यह रूई चीटियों की तरह
चलनेवालों की पीठ पर
खड़े करती है मंदिर

और धूर्त ईश्वर को बिठाकर
लूटती है अबोध आस्था

यह रूई
राजनीति की रामनामी ओढ़
ठगती है सच को
अविश्वासी धर्म की आग सुलगा
जलाती है बगीचे।

यह रूई
नये सपनों के मुँह पर
उगने के पहले ही
रख देती है पत्थर
खलील भाई
इस बार ठीक से धुन दो
इसके रेशे रेशे को

१-१०-८१

रात-पहरेदार

४ अक्टूबर की रात
घूम घूमकर लगा रहा था पहरा
मिट्टी की कलापूर्ण देवी को
चुरा न ले माताल अंधेरा
ईश्वर भी खरीद-बिक्री की वस्तु बन गया है
मूर्तियों की तस्करी लोग करते हैं धर्म समझ।

पंडाल में ऊँघते
मुरझाये मलय बाबू को
तंग कर रहे थे—शारदीय मच्छर
ऊँघ-ऊँघ कर बोल रहे थे—
"गले में डोरी बांधे
झूल रहा है अभी बोनस
पर्व के आनन्द को चाट गई महँगाई"
बच्चे नहीं जानते हैं इस सफेद सच को
खामोशी के भय से
पीछे वाले हिस्से के कुत्ते
क्यों भौंकते हैं ?

पोखर वाले फ्लैट में
जमा है जुए का अड्डा
तैर रही परछाई बेगम-गुलाम की
नया वकील नशे में अनर्गल बकता है
पैसों को नचाता हुआ
दो सीढ़ी चढ़ता है
लड़खड़ाकर तीन सीढ़ी उतरता है।

अरे ! अभी तो पियक्कड़ वेचू बादशाह भी
नहीं लौटे
शायद कहीं रास्ते में बोतल बन लुढ़के हैं !
गाली गलौज 'खोखन' कर रहा
जुआरियों को—
"चूल्हे की हांड़ी का पानी
खौल रहा खाली
आंच के उजाले में इंतजार चावल का"
चीख रहे कब से
पत्नी बच्चे घर में
भाग जाओ—ढाक पीट जगा दूंगा सबको
चेहरों पर पुता पानी अभी उतर जायेगा
बनते हो मुझसे भी बड़े शराबी तुम !

पहरेदार आ रहा बांये रास्ते से फिर
सिगरेट का कश खींच शंकर बताता कहानी
"पेट की पखावज से परेशान
ग्लोब कांपे
नायिका के हाथ रोके नहीं रुकते हैं
अगले सप्ताह मंच पर सब कुछ आ जायेगा
लेकिन असली चेहरे की तलाश अभी जारी है।

कोने वाले फ्लैटों में
जोर की हँसी और रोने की आवाज
मिला जुला गोलमाल-मेन गेट पर ताला है
शायद पैसों के जोर पर स्वामी नम्बर दो
कर रहा होगा प्रेम
और कालाचांद ठंडे चूल्हे की लकड़ी से
पीटता होगा पत्नी को
क्यों नही कोई 'शरत' लिखता
ऐसी कहानी ?

धीरे धीरे रात दाग धो रही रोशनी में
जुए का अड्डा अभी भी जमा है
पार्थ आज जल्दी ही लौट गया घर को
नहीं तो बताता
"रातरानी कविता किस आँगन मिट्टी में
खुलकर खिलती है
और किस धरती पर हँसकर महकती है"
यहां कौन सुनता समझता है कविता ?

'विप्लव' लपेटे लुंगी
उलझा होगा कहीं बतरस में
बैठने के बाद उठने का नाम नहीं
हवा का नशा उस पर भी चढ़ता है।

चार के टंकारे बजा गई घड़ी अभी
मटमैला उजाला फैलने लगा आकाश में।

५-१०-८१ (दुर्गापूजा)

कैसे हँसे ?

जड़ संस्कार-पुराने धूप से
धुएँ के बादल बनाकर
अपने जादूगर ईश्वर का चमत्कार
फैलाते हैं चारों तरफ
फिर किस तरह और कैसे हंसे
नये सपनों की फसल ?
दो कदम चलने के पहले ही मन में
रास्ता काटकर भागी बिल्ली का अपशकुन
पैदा करता है बेचैनी
ओझा की झाड़ फूंक के फंदे में
अभी भी फंसा है गांव-शहर।
मरण से जन्म तक के हर मोड़ पर
अपने अफीमी मंत्रों का थूक उछाल
बगुले की मुद्रामें चोटी बांधे बैठा है ब्राह्मण
बाबूसाहब के अछूत-घास के घरों को जलाकर सेंक रहे हैं हाथ।
अभी भी नारी आवारा वस्तु बन भटकती है
और नये शिशु के जन्मते ही
अज्ञात कारावास की सजा सुनाते हैं
शासते पंच परमेश्वर। फिर किस तरह और कैसे हंसे—
समय रहते ही नये सपनों के लिए
शब्दों के धारदार हथियारों से
अन्ध विश्वासों के भूरे भुरभुरे पहाड़ों की जड़ों को काट
सूरज की रोशनी को
हर रोज पिघले शीशे की तरह उड़ेलना होगा।

१४-११-८१

लाल फूल

जूड़े में सजे-हँसते लालफूल
देखकर
उदास हो रोता है
मरियल मन मोटा अंधेरा।
गंध धरती के कण कण में
फूंकती है नया जीवन
नये वसंत का स्वप्न देखते हैं
अड़ियल ठूंठ
और वह गुस्से से दांत किट किटा कर
चीखता है चिल्लाता है
अपने ही बाल नोचता है
मरियल मन मोटा अंधेरा।
हवा से हाथ मिलाकर गन्ध
घूमती है जगल-जंगल
दरवाजे खटखटाकर उड़ेलती है
संगीत के स्वर
और 'वह' एक क्षण एक कर सोचता है
पेड़ों पर चहकते-रंगीन सपनों जैसे चूजों को
धांय धांयकर बिछा देता है
हे ईश्वर
इनकी चहक सुन हँसते हैं ये फूल
मुझको तिल तिल जलाने को हँसते हैं ये फूल
उदास होकर रोता है मरियल मन
मोटा अँधेरा

७-१२-८१

ऊब गये हैं लोग

जादू भरे शब्दों का मायाजाल
कैंसर मरीज की तरह मर रहा है
दिन-रात
इंतजार करते करते ऊब गये हैं
लोग—
नयी रोशनी की तलाश में
अन्धेरे को जेबों में भरकर
घूम रहे हैं-लोग
हर घुमावदार मोड़ पर टकराते ही
पूछते हैं एक ही प्रश्न
नयी रोशनी को देखा है कहीं ?
ऊब भरा उत्तर सुन
खीझते हुए चले जाते हैं दूर
तलाश में-अगले मोड़ पर लोग—
लहू लुहान विश्वास
अपने घावों को सहलाता हुआ
चलता है साथ साथ।

७-१२-८१

ऊब गये हैं लोग

जादू भरे शब्दों का मायाजाल
कैंसर मरीज की तरह मर रहा है
दिन-रात
इंतजार करते करते ऊब गये हैं
लोग—
नयी रोशनी की तलाश में
अन्धेरे को जेबों में भरकर
घूम रहे हैं-लोग
हर घुमावदार मोड़ पर टकराते ही
पूछते हैं एक ही प्रश्न
नयी रोशनी को देखा है कहीं ?
ऊब भरा उत्तर सुन
खीझते हुए चले जाते हैं दूर
तलाश में-अगले मोड़ पर लोग—
लहू लुहान विश्वास
अपने घावों को सहलाता हुआ
चलता है साथ साथ।

७-१२-८१

सूखी लकड़ी की तरह धुंआ होती 'क्रान्ति'
कर्ज के हिमालय से दबता जा रहा फूंसिया
गुफा में शांति खोजते
थके हारे अफीमी महाराज।

भीतर ही भीतर राठौड़ी जूते की मार से
टूटते परिवार
अन्धकार जकड़ता टिमटिमाती रोशनी को
मन ही मन हंसते हैं नये साहूकार।

लेकिन 'सन्नू की भूख' खोद रही सुरंगें
रंगीन चश्मेवाली आंखें
देखती क्यों नहीं इस सच को ?

२६-१-८२ (बीकानेर)

शहर एक सच (संदर्भ बीकानेर)

इस टूटी ड्रेसिंग टेबुल के आईने में
बिखरा पड़ा है आस-पास का सच
मसलन—ऊबड़खाबड़ सड़कें
बार-बार की ठोकर से घायल होते पाँव
बर्फ की तरह जमी रेत में
ठिठुरते उदास खड़े गांव
जो कभी-कभार बदलते हैं करवट।

इत्मीनान से भौंकता चमकते पट्टेवाला मोतिया
झुरकशी चेहरों को देखकर डरता है।
जिन्दगी को पापड़ की तरह बेलती सूजी आंखें
भांग के नशे में टप्पे मारता पाटे का बादशाह
अतीत की घिसी अंगूठी को रगड़ता है रुक रुक कर।

छोटे दबे घरों को डकारता बड़ा बंगला
जंगल की खामोशी पर धींगा मस्ती से कब्जा करते
हुल्लड़बाज
हुड़दंग का चंग बजाते घूमते हैं सफेद ऊंट
फावड़ा-कुदाल की आँख से ताकते हैं
चुपचाप खुरदरे हाथ।

ठेकेदारी की अचकन पहन
नशे में झूमता गायत्री मंत्र
वर्ष में दो-तीन बार माँ बन

सूखी लकड़ी की तरह धुआ होती 'क्रान्ति'
कर्ज के हिमालय से दबता जा रहा फूंसिया
गुफा में शांति खोजते
थके हारे अफीमी महाराज।

भीतर ही भीतर राठौड़ी जूते की मार से
टूटते परिवार
अन्धकार जकड़ता टिमटिमाती रोशनी को
मन ही मन हँसते हे नये साहूकार।

लेकिन 'सन्नू की भूख' खोद रही सुरंगें
रंगीन चश्मेवाली आंखें
देखती क्यों नहीं इस सच को ?

२६-१-८२ (बीकानेर)

खामोशी की चहलकदमी

अब मोतियाबिंद आंखों से सरक कर
दिमाग की नसों में घुस रहा है
खामोशी की चहलकदमी से घबराकर
'सर्जन' अपने औजारों को छूकर
छोड़ देता है कापते-कापते···
लोग सोच रहे हैं कुछ न कुछ करना चाहिये
इस तरह हाथ पर हाथ रख बैठने से
कैसे चलेगा जीवन ?
और कुछ नही तो आओ
पेंसिलों को फिर से छील कर
नोंकदार बनायें
हाथ पाँव में फैलती ठंडी जड़ता को
काटना आरम्भ करें
आकाश स्वय ग्रहों के मिलने से
हांफने लगा है
घबराकर-बार-बार धरती को ताकता है
और राहत की सास लेता है।

उसके सामने ही हवा
अपने वसंती हाथों से झकझोर कर
झाड़ रही है मस्तिष्क के मोतियाबिंद को
रोशनी फ़िर फूल की तरह महकेगी
हर शाख पर
आओ मरे पत्तों की तरह मरी इच्छाओं को
बुहार कर फेंकें।

१०-३-८२

गणतंत्र-एक चेहरा

उनके हाथ में हत्या के अलावा
और कोई हथियार नही है अब।
किराये के पालतू गुण्डों को
दारू की दौलत में डुबोकर
चमकते दिन में—हत्या का हारमोनियम बजाते हैं
और आनन्दमार्गी पोशाक पहन
नाचते हैं सड़कों पर
बदनामी का टीका
धूप की तरह चमकते
श्रम के चेहरे पर निकालते हैं।
सत्ता के सुख स्वाद का घूंट
उथल पुथल मचाकर
किसी भी तरह झूठ का चोख भरा सरगम गाकर
पीना चाहते हैं
अपने खूनी हाथ सड़क की तरह बिछी
परिश्रम की पीठ पर पोंछकर—भाग जाते है
अरब की रंगीन रातों की बाहों में—
वे जब-जब हत्या का हथियार तेज करते हैं
उन्हें हर जगह मुट्ठियां भींचे लोग मिलते हैं।

२२-५-८२ (मथुरा)

आदत

अभावों के भयावह जंगल में रहकर
रंगीन स्वप्न देखने की आदत
परेशान करती है बार बार।
जंगल का शोर आंधी की तरह घेरकर
जकड़ता जा रहा है अपने जाल में
जबरदस्ती—
अलमस्त जवान हवा को
मादक गंध पिलाकर
बना लिया है बंदी
मौत की खामोशी के घेरे में
जिन्दा रहकर हंसने की आदत
परेशान करती है बार बार।
सपने उगकर महकने को
छटपटाते हैं
जंगल के शोर को बांसुरी में
कैद कर गुनगुनायेंगे।
अजन्मे शब्द फिर मेघ बन मंडरायेंगे
कठोर माटी की कैद से मुक्त हो
उगने का स्वप्न
परेशान करता है बार बार

१४-७-८२

घर एक स्वप्न

कागज पर खिंची लकीरों में ही
घर बनने का स्वप्न
लम्बे इंतजार के बाद मिले
मित्र का सुख देता है।

पूर्व की खिड़की से-सुबह की ताजा हवा, धूप
आराम से टहलती हुई आयेगी
तंगी से परेशान, कर्ज के बोझ से दबी
भीतर की उमस को
बुहारकर ले जायेगी।

आकाश की छतवाले इस घर में
दिन का शोर हुड़दंग मचायेगा शाम तक
और प्यास के मारे परेशान करेगा
गूंगे नल को।

थकान से चूर पश्चिम के आकाश की
उदास लाली का बिम्ब
फेंक जायेगा खामोशी
अष्टावक्री मुद्रा में खड़ा नीम
तारों के साथ पहरा लगाकर तोड़ेगा उदासी।

फिर भोर के मजदूर की कुदाल
नींव में अटके अन्धे रोड़ों को
खोदकर निकालेगी...

१४-७-८२

जिसकी लाठी उसकी भैंस

चौबिया पाड़े के टीले पर
लंगोट कसे खड़ा गुरुघंटाल चौबे
ताल ठोंककर ऊंची आवाज में बोलता है
जिसकी लाठी उसकी भैंस-जय जमुना मैया की।
और भांग छानने बगीची की ओर चल पड़ता है
गली-नुक्कड़-चौराहा उसे देखते ही बोलते हैं
जय जमुना मैया की—जय जमुना मैया की।

गुरुघंटाल के गुस्से से मथरा नगरी कांपती है
और घूंघट निकाल रबड़ी के भोग से करती है सेवा
लेकिन अपने रिक्शे के पैंडल पर—मई के आकाश से
बर्फ की तरह पिघलकर पानी होता दुःखी
चुपचाप देखता है और हँसता है
जीवन का गणित कितना सहज और सरल है
जिसकी लाठी उसकी भैंस—जय जमुना मैया की ?

गुरुघंटाल बंगाली घाट पर
कछुवों की तरह लेटे परजीवियों को
भाग की तरंग में रासलीला सुनाता है
और केलिकुंज में विधवा रसवन्ती के साथ
रास क्रीड़ा करता है—गोलोक जाने।
घाट के कछुवे – जमुना की गोदी में
नाच नाचकर गाते हैं
जय श्री राधे की—जय जमुना मैया की।
लेकिन बर्फ की तरह पिघलकर पानी होता दुःखी

चुपचाप देखता है और हँसता है
जिसकी लाठी उसकी भैंस—जय जमुना मैया की ?

गुरुघंटाल मंत्र फूंक कर बाँझ को गाभिन बनाता है
भूत प्रेत झाड़ कर—बोतल में कर लेता है बन्द
पुश्तैनी पेशा है भक्तों का भोजन
स्वर्ग की चिट्ठी दरवाजा मोक्ष का खोलना
और जो भी टेढ़ी आँख से देखे
ताल ठोंककर ऊँची आवाज में बोलना
जिसकी लाठी उसकी भैंस—जय जमुना मैया की।
लेकिन बर्फ की तरह पिघलकर पानी होता दुःखी
चुपचाप देखता है और हँसता है
जिसकी लाठी उसकी भैंस—जय जमुना मैया की ?

१५-७-८२ (मथुरा)

एक और हिन्दुस्तान

कीकर की कांटेदार बेंत
सत्ता के सफेद हाथों में चाबुक बन
नाचते नाचते
एक और हिन्दुस्तान बन गया हूँ
मेरी पीठ पर—
जहाँ खड्डों की तरह फैले गहरे घाव
दुःख की बाढ़ में डूबता एक राज्य है।
जिसमें जवान खाली हाथों की चीख
अकाल भूख कर्ज की महामारी का संगीत
थोक अछूत हत्या, बलात्कार का नंगा नाच
कुर्सियों पर टंगी टोपियों की लूट पाट
भूख से भभकते आदमी की
आंख से चूता खून-कह रहा है सारी कथायें।
अन्धेरे में रेंगरेंग कर घूमती रक्त धारायें
मिलकर खोज रही हैं नया रास्ता !

२०-८-८१

आग की आवाज़

पहाड़ के सीने में छिपी आग
पिघल कर
एक एक बून्द बन ठपक रही है।
इलाके की नंगी हवाओं का सुबकना
लम्बे देवदारू के पेड़ अपनी खुशबू से
ढंक लेते हैं
जीवन के बोझ से धनुष बनी पीठ
धंसकर बजाती है पेट की प्रत्यंचा।
कुहासे में कुनमुनाते सपनों पर
सन्नाटा-सफेद चादर ओढ़े
लगा रहा है पहरा।
शायद सूरज बर्फ ढ़के क्षितिजों के आसपास है?
अभी अभी यात्रियों का दल
नई पगडण्डी पर फिसलता हुआ
गुजरा है
पहाड़ी गीत खरगोश की तरह फुदक कर
फैल रहा है इधर उधर
अगले पड़ाव पर शिकारियों की
मनमौजी बन्दूकें सुस्ता रही हैं
थक कर बैठो मत रोशनी
बून्द बन टपकती आग की आवाज
बुला रही है।

२२-११-८२

बाहर की हवा को

कमरे की इस बन्द खिड़की को खोलकर
बाहर की हवा को भीतर आने दो
इन्तजार करते-करते थक गई है !
कैसे इस चिपचिपी घुटन में
तुम्हारा मन लगता है ?
एक बार झांककर तो देखो-जीवन का संगीत
बहुत बड़े शोर शराबे के बीच भी
धरती पर हँसता हुआ घूम रहा है।

शब्दों के सहारे यह संगीत
वर्जित सीमाओं के पार जाता है
और महकते सपनों की गंध लाता है
एक बार गंध को कमरे में फैलने दो
बाहर की हवा को भीतर आने दो।

सामाजिक भूगोल से भरे इस कमरे में
क्या नहीं है ?
कोने में उदास खड़ी गिटार
जिसके होंठों पर भूरी धूल की पपड़ी जम गई है
गमगीन पीले आकाश में थका चेहरा लिये
फिसलकर लुढ़क रहा है सूरज
खुशबू के जमघट से काले कैनवास की डोली में बैठ
नया जीवन खोजती दुल्हन !
बेफिक्री से सिर उठाये घूमते घोड़े

गिर गये सवारों को ढूढ़ रहे हैं
गुलाबी गुलाब के चेहरे से
चू रही है पसीने की बूदे
और शो-केश में कैद-कन्धों पर ग्लोब उठाये
कसी मांस पेशियों वाला चेहरा
बार बार बन्द खिड़की की ओर ताकता है
एक बार बाहर की हवा को भीतर आने दो
कमरे की बन्द खिड़की को खोलकर···

हेंगर में लटकते रेशमी कपड़ों की उदास सरसराहट
सिगरेट की छाई बिस्तर की मुची चादर पर
बैठी है अनमनी
चालू किताबों का नीला पहाड़
दिल में दरारें लिये खड़ा है
चेहरे पर चेहरा चढ़ाने वाले पाउडर के डिब्बे
मुंह खोले बैठे हैं
फिर भी रोशनी सिकुड़े दायरों से निकलकर
फैल रही है हर तरफ ··
उफ ! कौन खिड़की खोलने-बजा रहा है
कालिंग बेल-बार बार
एक बार बाहर की हवा को भीतर आने दो—

यह क्या-फ्रेम में टंगी हँसती तस्वीर का
चेहरा-भीतर की चुप्पी में घुलमिल गया है !
दर्द के दाव से सपनों के हार्मोन की पीड़ा
कुरेद रही है भीतर ही भीतर
लगातार बज रही फोन की घन्टी को
नकली हँसी का उत्तर सुख देगा शायद !
लेकिन दर्द का दाब तो कम नहीं होगा ?
पीड़ा के सात समन्दर लांघ-जलती मोमबत्ती के प्रकाश में

उपचार लाने तैयार बैठे हैं शब्द
एक बार बाहर की हवा को भीतर आने दो।
कमरे की बन्द खिड़की को खोलकर।

७-१२-८२

नंगे पाँव--गाँव

सूखे के हाहाकार को
नंगे पाँव रौंदता हुआ—गाँव
जुलूस बन घुस रहा है शहर में।

छोकरे ऊंगली छुड़ाकर अजगर-सी लम्बी सड़क पर
सरपट दौड़ना चाहते हैं—सबसे आगे
पहली बार देखा है ऐसी सड़क को।
पिता गुम जाने के भय से छोड़ता नहीं है हाथ।

अभाव की आग से झुलसी कूबड़ निकली पीठ को
सीधा करके चल रहे हैं बूढ़े
अन्तिम सांस तक चलने का इरादा लिये

सूखते जीवन सपनों की कठोरता से मुट्ठियां ताने
अधड़ बन नाच रहे हैं नौजवान

मां की गोद में ही दूध पीता-भूख की फौज का नया सिपाही
किलकारी मारकर हँस रहा है
अधनंगी देह को जुलूस से ढक कर
नयी फसल की हँसी का स्वप्न देखती
जल्दी जल्दी चल रही है मां।
अगुवे की तीखी आवाज—गाँव के हाहाकार को
तेज हवा की तरह फैल रही है इधर उधर
कानाफूसी-ठंडे घरों की तिजोरियों में धुकधुकी

लोहे के टोप-अश्रु गैस की सजी कतार
नंगे पोस्टरों का समाज-भयभीत हो पूछता है
भूख की भीड़ घेरने लगी है शहर को
क्या यहां भी फैलेगा सूखे का हाहाकार

१३-१२-८२

थिरकती पत्तियां

गिरजे के टंकोरों की आवाज से
पेड़ों की हरी मासूम पत्तियां
घायल होकर गिरती रहती हैं
प्रार्थनायें पाखण्ड की पवित्रता को बचाने
सिर झुकाये खड़ी हैं
ईश्वर अपने दस्तानों को
चाबुक बजाकर सिलवा रहा है
पत्तियां जख्मी होकर गिरती रहती हैं।

सौ गांवों की धड़कन पर
धमा चौकड़ी मचाता महानगर
भय के सपने देखकर
होता जा रहा है बूढ़ा
उसके फुर्तीले हाथ-पांव
डिस्को की डोरी में बंधकर
घूम रहे हैं कूले मटकाते
उसका मन ऊब से उकताकर
जब भी कुछ करने की सोचता है
गिरजे के टंकोरों की आवाज झनझनाने लगती है
पत्तियां पीली होकर गिरती रहती हैं।

मौसम अपने हाथ पांव पटक कर
करवट बदलने को छटपटाता है
पतझड़ के पहले ही पेड़ों का
नंगा होकर चीखना

गिरजे के टंकोरों से वसन्त को छीनना
जंगल के सूखे मन में
नये हड़कम को जन्म देता है।

दूब पर बिखरी ओस की चमक में नहाकर
मासूम हरी पत्तियाँ
जख्मी होकर भी थिरकती रहती हैं।

९-३-८३

रोशनी की आवाज़

इस भयावह घटाटोप अंधेरे में
जन समुद्र में डूब डूब कर स्नान करती
रोशनी की आवाज
गूंज रही है मेरे आस पास
फिर सन्नाटा आलपिन वन
क्यों चुभता है मन में ?

चीजें समय के आइने में चेहरा देख
बदलती जा रही हैं रूप
अपने आस पास की बेहोशी को
पीट पीट कर होश में लाने की चेष्टा
कभी घुटन और कभी ताजा हवा का
सुख देती है।
पीछे छूट गये पत्थर विश्वासों को
नया अर्थ न देने का दुःख
आलपिन वन क्यों चुभता है मन में ?

अंधेरा अंधड़ बन घेरता है
जन समुद्र को
रोशनी खून में नहाकर
तोड़ती है घेरे
समय की समझदार सीढ़ियों पर
चढ़ने के निशान
सिकुड़े दायरों का आकाशी फैलाव

शब्दों के अनगिनत नये दरवाजे
न खोल पाने का दुःख
आलपिन बन क्यों चुभता है मन मे ?

११-३-८३

अहसास

तीखी धूप में
टूटे आईने के टुकड़ों की तरह चमकता;
पीपल के पत्तों का झुण्ड
दूर-दूर तक पसरी
नगी पगडण्डियों पर छाया फैलाकर
अपने होने का अहसास बनाये रखता है।

रंग-बिरंगे बादल
अपना खालीपन छिपाने
धरती के समक्ष-बार बार
झूठ को सच की तरह बोलकर
हो जाते हैं चुप।
मानसून अपने दबाव से झकझोर कर
चुप्पी तोड़ने की करता है चेष्टा
बिजलियों की कड़क
और आकाश की गूंज के बीच
चमकते पत्तों का झुण्ड
अपने होने का अहसास बनाये रखता है।

यह अहसास ही है
जिसने अंधेरे की कैद में
रोशनी को रखा है जिन्दा
लम्बे मौन की घुटन से
रूढ़ समय के अपमान भरे

बिना डरे

इस तरह डर कर रोने
कम नहीं होगा दुख
यह कैंसर किसी को भी नहीं छोड़ता
मृत्यु स्वयं नतमस्तक होकर
करती है स्वागत-तुम भी
अपनी विश्वासी सांसों के साथ
बिना डरे करो—मेरे पिता !

यह अस्पताल का खैराती वार्ड है
जहाँ ईश्वर के भरोसे चलता है-उपचार
और प्रत्येक सीढ़ी पर
मुंह खोले बैठा है
दिन प्रति दिन घटकर छोटा होता
सिक्का-जिसकी खनक
सारी दुनिया को बनाती है पागल।

मेरे पिता
चीखो मत दर्द से
नींद का इंजेक्शन लिये घूम रही है नर्स
तुम्हारा चीख भरा दर्द
खलल डालता है इसकी नींद में
सोने दो इसे
अपने शरीर की दोहरी थकावट
मिटाने-सोने दो।

कठोर समय के खिलाफ

'रोने से राज नहीं मिलता'
और न ही कोई पोंछता है
रुमाल लेकर आंसू
मुनिया इस कठोर समय के
घेरों को तोड़कर
जीने का तन्त्र सीखो
और सच्ची कलाकृति की तरह
सिर उठाकर जीओ
इस कठोर समय के खिलाफ।

तुम्हारे मासूम पवित्र हृदय में
लहराता सपनों का समुन्दर
गुलाब जल की गन्ध का सुख देता है
उसे आवारा शक की छाया से दूर रखो
अपनी इच्छाओं के अक्षर
निर्भय होकर लिखो
इस बदनाम आकाश की छाती पर
मुनिया इस कठोर समय के खिलाफ
रोने से राज नहीं मिलता।

समझ के सभी सबक
बार बार पढ़ो
जीवन यात्रा के टेढ़े मेढ़े मोड़ देंगे
नई दिशा

जीने की ललक

मोटे गुदगुदे शरीरों वाली—निष्ठुर
तिजोरियों का जमघट
सिर झुके कठपुतली अफसर
खीसें निपोरते दलाल
और ऊपरी आमदनी वाली कुर्सी पर चिपके
किरानियों की भीड़ के बीच
लम्बे कदवाला मुलायम मन खुरदरा मास्टर
चाक की तरह घिसकर भी
जीने की ललक लिये घूमता है
और यह बहुत बुरा है।

उसके मुँह पर
आर्थिक अपमानों के असंख्य तमाचे
दिन रात बजते रहते हैं
हर मोड़-मुहल्ला हेठी नजर के तराजू पर तौलता है
समझ के दायरों का बढ़ना
उसके अपराधों की लम्बी सूची है।
खाली दिमागों की सपाट तख्तियों पर
अमिट अक्षर लिखकर
जीने की ललक लिये घूमता है
लम्बे कदवाला मुलायम खुरदरा मास्टर
और यह बहुत बुरा है।

लेन-देन की चक्की में गेहूँ बन पिसता समाज
झाड़-फानूस की नकली चमक में

दाग छिपा-चमकता समाज
ऊपर से नीचे तक खोखली हँसी हँसकर
अपने रिसते घावों पर मरहम लगाता समाज
मुँह टेढ़ा कर ताकता है—थूकता अपमान से
अपमान के जहरीले घूंट पीकर
जीने की ललक लिये—हर रोज नये स्वप्न देखता
लम्बे कदवाला मुलायम मन खुरदरा मास्टर
और यह बहुत बुरा है।

वह नर्म चिकनी मिट्टी का
एक आदर्श पुतला
शिलालेखों की तरह खुदी है
जिस पर सारी नैतिकता
नजर उठते ही जिसकी प्रेम बन जाता है सूर्य ग्रहण
पवित्रता पागल बन घूमती इधर-उधर।

खाली जेब पेट की भट्ठी में अक्षर भुनकर
लोहे के चने चबाता—मास्टर
बेटी के हाथ कैसे करेगा पीले
हर तरफ हाथी से भी मोटी मांगे
खड़ी हैं मुँह खोले
'वह' कैसे बच सकता है—चींटी बन
इस सुलगते जंगल में—मुलायम मन मास्टर।

होड़ की छीना झपटी में घर नोचता है 'उसे'
तीखे व्यंग्य भरे शब्दों की मार से
घायल होकर—'वह'
कभी बुरा और कभी अच्छा स्वप्न देखता है
लम्बे कद वाला मुलायम मन मास्टर

हताश होकर भी जीने की ललक लिये घूमता है
और यह बहुत बुरा है।

८-७-८३

प्रशंसा की खुशबू

मृत्यु के नाम पाखंड की ढोलक का
बजना हो गया है मन्द
अब थकावट के पुराने बिस्तर पर लेट कर
'प्रेत' और 'जीवमुक्ति के' खर्च का
जोड़ रहा है हिसाब
दक्षिणा के रूप में वह कितनी बार
चढ़ा है नारायण बलि पर
महा ब्राह्मण हर कदम पर थूकता है
गुस्से के झाग।

एक ऋषि की कामोत्तेजना छिपाने
पाखंडी कल्पना की कथा वाला गरूड़ पुराण
मोक्षका मोहिनी मंत्र मारता है बार बार
आटे के पिन्ड-भूखका पेट तो भरते हैं
पता नही कहां और कैसे मिलता है
किसी मृतक को मोक्ष ?

ढोंग और दिखावे की वाह-वाह
किस गहराई तक तोड़ती है
इसका अहसास-शरीर के मांस से
सूद की किश्तें चुकाते वक्त होता है।
बिरादरी के पंच
कुटिल प्रशंसा की खुशबू छिड़क कर

नया तराजू लेकर बैठ जाते हैं
भारी कर्ज के लड्डू तौलने।
जर्जर समाज के खांसने का
झूठा भय इस तरह दबोचता है
आदमी को
कि उसे सब समय
काले तिलों के टीले पर बैठे
कर्ज के यमराज की आवाज सुनाई पड़ती है
और वह कभी खुद को
कभी परिवार की आहुति देकर
यमराज को हवन की ज्वाला में जलाता है।

३०-७-८३

और तो सब ठीक है

और तो सब ठीक है
केवल कुछ सिरफिरे गुलाम
सिर भुकाकर करते नहीं हैं सलाम।

महामहिम—
हमारे तीनों सिपहसालार
अपने पवनवेगी घोड़ों पर सवार होकर
जब भी घूमते हैं शहर में
चारों तरफ मुँह पर ऊँगली रख कर
बैठ जाती है खामोशी
पेड़ों के पत्ते तक नहीं हिलते हैं
भीतर की सुगबुगाहट से
केवल कुछ खूंखार अभावों की टेढ़ी भौंहों से ताकते हैं
सिर भुकाकर करते नहीं है सलाम!
और तो सब ठीक है!!

महालेखाकार—
मुनाफे के हरिण किस गति से
भर रहे हैं चौकड़ी
महामहिम—मुनाफा
जेट विमान की गति सा बढ़ रहा है
चारों तरफ बंठा दी है लोहे के कांटों की सुरक्षा
और तो सब ठीक है
केवल कुछ दरिन्दे गुलाम
अन्धेरी गुफाओं में रोशनी के साथ

मचाते हैं शोर
सिर झुकाकर करते नहीं सलाम !
और तो सब ठीक है !!

३१-७-८३

कला पानीदार आईना

चेहरे की उदासी
पानीदार आईना बन चमकती है
कौन देखेगा बहुत गहरे में
उतर कर अपना रूप ?
हाथ हिलाडुला कर-हाल पूछना
तेजी से रुकना-सुगन्ध बन मिलना
पलकें नम करके बैठना
नगर जीवन का एक खुशबूदार नाटक है
जिसमें न चाहते हुए भी
पात्र बन कर निभानी पड़ती है
भूमिका—
दर्शकों की बड़ी चीख
और भारी शोर से घायल होकर
चलने की चेष्टा-उदासी को
कला की उस जमीन पर ले जाती है
जहां मन के सारे व्यापार
अपनी सज्ञायें भूल जाते हैं
और कला हँसते हुए पानीदार आईने में
देखती है चेहरा।

४-८-८३

खाली हाथों का साया

वह किस चमकती गणित का
तरीका है
जिससे मिल जाता है
घर की खींचातानी के तलपट का हिसाब ?

ढाई हाथ मैली चादर के नीचे
स्वप्न देखता-छः हाथों का पूरा परिवार
पैवन्द लगाते लगाते
रह गया है खाली हाथों का साया।

हिसाब की बारीकियों वाली अक्ल
बाजार की किस दुकान पर मिलती है ?
चुटकी बजाते ही
तीन के हो जाते हैं तेरह
धूल झोंक कर
सोने के पहाड़ को जेब में रख
घूमने की कला
शायद इस युग का सबसे बड़ा दर्शन है !
जिससे मिल जाता है
घर की खींचातानी के तलपट का हिसाब ?

रेंगते हुए
एक ऐसी सभ्यता के जंगल में
जा रहे हैं पांव
जहां लौटने के रास्तों पर

अराजकता-बजा रही है।
हत्या के नगाड़े
बल की भुजाओं में झूल रहा है
बलात्कार
और रगे सियार
सभ्यता की सुरक्षा में फेर रहे है माला
बार बार उलझ कर टकराती है
चेष्टा
घर की खींचातानी के हिसाब पर ?

१९-९-८३

रोशनी की तलाश

यूं ही कंधे उचका कर सिर झुकाये
अपनी धंसी आंखों से
धरती को ताकता हुआ
खामोशी की तरह गुजर जाता है 'वह'
मौसम की मार खाकर चुप रहना
उसके जीवन का एक हिस्सा बन गया है
लेकिन स्वप्न देखकर मन ही मन हंसना
और रोशनी को तलाशना
वह कभी भी नहीं भूलता।

काले थैले की कैद से निकाल कर
मक्खन सी मुलायम उँगलियों ने
जब-बदरंग अंधेरे से चिपकी हुई
आंखें खोलीं
'वह' भयभीत होकर चीखने लगा
उसकी भोली आवाज के मीठेपन से
गुमसुम दिशाओं के होंठों पर
हँसी की रेखा खींच गई
और सूने भयावह भूतों के अड्डे का रंग बदल गया।

शोर के घेरों में सांस लेते गूंगे गाँवों की
कच्ची कीचड़ में डूबी पगडंडियों पर
कई खिड़कियों वाला जांघिया पहन-नंगे बदन
'वह' शेर का हौसला लिये
जंगल पहाड़ों पर घूमता

और सीटी बजाकर नदी के फैले किनारों पर
सेतु बनाता
अपनी इच्छाओं के छोटे छोटे ताजमहल
कागज की कश्तियों में सजाकर
तालियाँ बजाता
जब भी बड़ी मछली छोटी मछली को निगलती
'वह' मौसम की मार महसूस कर चुप रहता
लेकिन स्वप्न देखकर
मन ही मन उदास हँसी हँसना
और रोशनी को तलाशना
कभी भी नही भूलता।

जीवन के सच्चे सबक सीखने
धूप खौलती सड़कों पर-नगे पांव
बेतहाशा दौड़ता
और अपने पसीने के गंगा जल को
अमृत बनाकर पीता
थक कर-बबूल की छाया में सुस्ताते वक्त
उसकी भेंट ईश्वर से हो गई
उसका मन आस्था की नर्म गलियों से
गुजरता हुआ कमजोर होने लगा
पाखड के परमेश्वर ने
इस कदर जकड़ कर गुलाम बना दिया
कि उसका हिलना डुलना ईश्वर की मर्जी पर हो गया
लेकिन बीच-बीच में मर्जी के खिलाफ
स्वप्न देखकर हँसना
और रोशनी को तलाशना
कभी भी नहीं भूलता।

भटकावों की टेढ़ी-मेढ़ी व लम्बी सड़क पर
कभी बैल बन मिट्टी के मन को भिगोता

और चिड़ियें की तरह मंडरा कर
दाने बटोरता
अकाल उसके जीवन की शाश्वत संपदा बन गया
'वह' सूखे के सन्नाटे का हाहाकार
खाकर हंसता
और जिन्दा रहने पर आश्चर्य करता।

फिर इस्पात की भट्ठियों में पिघलकर
अपनी मांस पेशियों के ढीलेपन को गिनता
नशे में डूबे पांवों को सम्भाल
चिमनी के काले धुएं में बिखरती
अपनी ही आकृति देख उदास हो जाता।
गुलामी की मार से उसका जिस्म
इस्पात और बटे हुए चमड़े की तरह सख्त हो गया
'वह' एक स्वप्न जी रहा है जो कि उसकी मदिरा और आहार है
लेकिन पढ़े जिन को शीशे में उतारना
और रोशनी को तलाशना
कभी भी नहीं भूलता।

'उसे' कुर्सियों की कसमसाहट
और टोपियों का टेढ़ापन
अपने झंडों पर चिपका कर ले गया
'वह' कभी भीड़ और कभी भगदड़ बनता
घायल होकर अपनी पीठ को सेतु बना
झंडों के रथ को पार उतारता
नये राजाओं की मीठी मार पर
गुस्से से थूकता—

उदासी के साथ भटकते-भटकते
उसने पहली बार शब्दों का संदेश
अपने जैसे लोगों को भेजा
और अचानक उसकी भेंट रोशनी से हो गई

दुखते घावों पर खुशबूदार मरहम का लेप लग गया
उसके पाँव
एक नये परिवर्तन की यात्रा पर चल पड़े
रास्ते का हर पड़ाव करता रहा सवाल
क्या बिना छल कपट के
रोशनी शेष तक चलेगी साथ साथ
'वह' अपने नये स्वप्न पर मन ही मन हँसा
और रोशनी को गहरे से तलाशना
कभी भी नहीं भूला—

२२-२-८४

जनवादी कविता जनता के सघर्ष को आगे बढ़ाने का एक शक्तिशाली हथियार है। लेकिन यह काम अगर पूरी समझदारी के साथ न किया जाये तो कविता न तो कविता रह जायेगी और न एक शक्तिशाली हथियार। कवि कर्म बड़े जोखिम और समझदारी का होता है। कविता को कविता की जमीन से हटाने की लाख कोशिशो के बावजूद कविता आज भी अपने पूरे विश्वास के साथ अपनी जमीन पर खड़ी है। कविता सचेतन रूप से समय की विसंगतियो, द्वन्द्वो, तनावो तथा इच्छा आकाक्षाओं को रूपायित करने का हथियार है जिससे पीड़ित आदमी समय के सघर्ष मे सफलता प्राप्त कर सके।

प्रस्तुत सग्रह कवि की काव्य यात्रा का जीवित दस्तावेज है जो बेबाक ढग से और कविता की जमीन को बचाते हुए लिखा गया है। कविता की आवश्यकता पर प्रश्नचिह्न लगाने वाला समय कुछ इस तरह की कविताओ के कारण आश्वस्त होता है। जनवादी कविता को काव्य के सभी उपकरणो के साथ एक शक्तिशाली हथियार बनाना हर ईमानदार कवि का दायित्व है। यह कार्य सघर्ष से जूझती जनता के साथ सहभोक्ता और सहकर्त्ता बनकर ही किया जा सकता है। ये कविताएँ इसी प्रक्रिया से जन्मी है। कविता की पाठ प्रक्रिया से गुजरने के बाद पाठक के मानसिक जगत मे एक हलचल पैदा हो तो कविता सही रूप मे हथियार बनती है।